International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(4): 123-124

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(4): 123-124
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 21-05-2018
Accepted: 22-06-2018

अनीता कुमारी
अनीता कुमारी – संस्कृत विभाग,
महात्मा गाँधी स्नातकोत्तर,
महाविद्यालय फिरोजावाद,
उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence
अनीता कुमारी
अनीता कुमारी – संस्कृत विभाग,
महात्मा गाँधी स्नातकोत्तर,
महाविद्यालय फिरोजावाद,
उत्तर प्रदेश, भारत

संस्कृत साहित्य में कर्मकाण्डों का सामान्य परिचय

अनीता कुमारी

प्रस्तावना

भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास का अध्ययन करने से हमें ज्ञात होता है कि देव पूजासंगतिकरण दानार्थक यज् धातु से यज्ञ शब्द निष्पन्न होता है। यज्ञ द्वारा अपने अभीष्ट देवताओं का आह्वान करते हैं यज्ञ के अवसर पर उन्हें सर्वाधिक रूचिकर समिधा के रूप में विकसित किया जाता हुआ जो उत्पन्न होता है वह यज्ञ है।"[1] अतः यज्ञ के उत्पत्ति परक् अर्थ को मुख्यतया मान्यता देते हुए भारतीय विद्वान ही नहीं अपितु पाश्चात्य विद्वान भी यज्ञ का मूल सम्बन्ध सतत् क्रिया शील सृष्टि विद्या से मानते हैं।

यज्ञ की महत्ता

भारतीय संस्कृति में यज्ञ का स्थान महत्त्वपूर्ण है। यह इहलोक में साक्षात् ऐश्वर्यरूप,[2] पापों, रोगों आदि का शोधक–नाशक,[3] तथा परलोक में स्वर्ग प्राप्ति का साधन[4] एवं अमरत्व का प्रापक है।[5] इसीलिए यही श्रेष्ठतम कर्म है।[6]

इस सर्वोत्तम कामथुक् कर्म को प्रजापति ने सृष्टि के प्रारम्भ में ही देवों और मनुष्यों के पारस्परिक निःश्रेयस के लिए उत्पन्न किया था।[7] अतः जन्यजनक–सम्बन्ध के अमदैत्त्व के आधार पर यज्ञ को प्रजापति ही कहा गया है।[8]

यज्ञ की इसी महत्त्वपूर्ण उपयोगिता और विविधता को इस शब्द की धातु यज् देवपूजासंगतिकरणदानेषु से स्पष्ट किया गया है।

यज्ञ की आवयश्यकता

वैदिक संस्कृति में मानव जीवन के कल्याण के लिये यज्ञों को आवश्यक माना गया है। कर्म–मीमांसा के प्रवृत्त होने पर मानव देह धारण करते ही द्विज, ऋषिगण, देव, स्वरूप हो जाता है।

वैदिक साहित्य में मुख्य रूप से आर्यों के कर्मकाण्डों का विस्तृत रूप से वर्णन मिलता है। हमारे पूर्वजों ने राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, विभिन्न क्षेत्रों में उन्नति करने के लिए विशिष्ट क्रिया कलापों का निर्धारण किया है जो कि वैदिक साहित्यों में कर्मकाण्डों के नाम से जाने जाते हैं। हमारे राजाओं ने राजसूय अश्वमेघ आदि यज्ञ करके राजनीति में विशेष मान दण्ड निर्धारित किये। हमारे ऋषि मुनियों ने गृहस्थ जीवन की सफलता के लिए सोलह संस्कारों का प्रावधान किया। मानव जन्म से लेकर मृत्यु तक एक विशिष्ट कार्य योजना में वन कर कार्य करता हुआ अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सके इस हेतु आश्रम[9] एवं वर्ण[10] व्यवस्था का गठन किया। धार्मिक क्षेत्र में तत्त्व मीमान्सा मनीषियों ने विभिन्न प्रकार के धार्मिक आयोजनों के द्वारा मनुष्य के परम तत्त्व को प्राप्त करने के लिए वैदिक ग्रन्थों में विशेष प्रावधान किया।[11]

वैदिक कर्मकाण्डों में सबसे पहले यज्ञ विज्ञान का वर्णन हुआ है। यज्ञ का मनुष्य के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। यज्ञ करने से मनुष्यों को सुख की प्राप्ति होती है उनकी संस्तुति के लिए उन्हें महायज्ञ कहा जाता है, इससे यह तात्पर्य है कि वस्तुतः महायज्ञ उसका नाम नहीं है तो उनकी प्रशंसा के लिए ही इस नाम का प्रयोग किया जाता है।

तेषां 'महायज्ञ महासत्राणीति च संस्तुति।।[12]

इन महायज्ञों के सात प्रकार के प्राणियों को बलि अर्पित करना भूतयज्ञ हुआ तथा मनुष्यों को यथाशक्ति अन्नादि का दान करना मनुष्य यज्ञ कहलाता है।

अहरहर्भूतबलिमनुष्येभ्यो यथाशक्ति दानम्।
वैश्वदेवे वक्ष्यमाणेन बलिहरणप्रकारेण भूतेनूयोऽह
रहर्भतबलिर्देयः, एवं भूतयज्ञः। मनुष्येभ्यश्च
यथाशक्ति दानं कर्तव्यम्। एष मनुष्ययज्ञः।[13]

ब्रह्मयज्ञ में आकाष्ठात् का अर्थ है कि अन्न भी हो तो काठ तक की आहुति देवों के लिए दी जाती है इसका अर्थ यह भी है कि जिस किसी की तरह वैश्यदेव कर्म करने चाहिए। कुछ अन्य धर्मयज्ञों के अनुसार भोजन का अभाव होने पर वैश्वदेव नहीं करना चाहिए। पितरों के लिए अन्न के साथ जल भी दिया जा सकता है। यह उदक पात्र में किया जाना चाहिये यह पितृयज्ञ है। स्वाध्याय ब्रह्मयज्ञ होता है, ये महायज्ञ होते हैं।

देवेभ्यः स्वाहाकार आकाष्ठात् पितृभ्यः
स्वाधाकार ओदपात्रात् स्वाध्याय इति।'[14]

कर्मकाण्डों में वर्ण का दूसरा स्थान है। वर्ण धर्मों के अन्तर्गत आते हैं तथा धर्मों के लिए वेद ही प्रमाण हैं। इस प्रकार वेद ही धर्म और अधर्म के विषय के मूल प्रमाण हैं। वेद को मनु और गौतम ने भी धर्म का मूल माना है।

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च।।[15]

वर्ण चार प्रकार के हैं – 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ये चारों वर्ण सामयाचारिक धर्मों के अधिकारी हैं। इन चारों के अन्तर्गत अन्तर्भूत वर्णों का भी ग्रहण होगा। गौतमने प्रतिलोम वर्णों को धर्महीन माना है।

चत्वारो वर्णा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः।[16]

आश्रम मनुष्य के जीवन में तीसरे स्थान पर आता है। आश्रम जिनमें मनुष्य श्रम साधना और तपस्या करता है। आश्रम व्यवस्था ने ईसा के बाद पहली शताब्दी में एक धर्मशास्त्रीय ढाँचे की रचना की। यह ऊँची जाति पुरुष के लिए आदर्श थी, जिसे वस्तुतः व्यक्तिगत या सामाजिक रूप से कभी–कभी ही प्राप्त किया जा सकता था। दूसरे अर्थ में आश्रम शब्द का तात्पर्य शरण स्थल है, विशेषकर शहरी जीवन से दूर जहाँ आध्यात्मिक व योग साधना की जाती है। अक्सर ये आश्रम एक केन्द्रीय शिक्षक या गुरु की उपस्थिति से सम्बद्ध होते हैं, जो आश्रम के सम्बद्ध होते हैं जो आश्रम के अन्य निवासियों की आराधना या श्रद्धा का केन्द्र होता है। गुरु औपचारिक रूप से संगठित ज्ञान या आध्यात्मिक समुदाय से सम्बन्धित हो भी सकता है और नहीं भी। आश्रम चार प्रकार के होते हैं।[17]

1. ब्रह्मचर्याश्रम
2. गृहस्थाश्रम
3. वानप्रस्थ आश्रम
4. संन्यासाश्रम।

वैदिक कर्मकाण्ठ में संस्कार का स्थान चौथा है। संस्कार शब्द 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृञ्' धातु से 'धञ्' प्रत्यय लगा पर संपरिभ्यां करोति भूषणे' इस पाणिनी सूत्र से भूषण अर्थ में 'सुट्' करने पर सिद्ध होता है। इसका अर्थ है संस्करण, परिष्करण, विमलीकरण तथा विशुद्धीकरण आदि।

महत्त्व

जिस प्रकार किसी मलिन वस्तु को धो–पोंछकर शुद्ध–पवित्र बना लिया जाता है अथवा जैसे सुवर्ण को आग में तपाकर उसके मलों को दूर किया जाता है और उसके मल जल जाने पर सुवर्ण विशुद्ध रूप में चमकने लगता है ठीक उसी प्रकार से संस्कारों के द्वारा जीव जन्म–जन्मान्तरों से संचित मलरूप निकृष्ट कर्म–संस्कारों का दूरीकरण किया जाता है। कारण है कि हमारे सनातन धर्म में बालक के गर्भ में आने से लेकर जन्म से और फिर वृद्ध होकर मृत्युपर्यन्त तक संस्कार किये जाते हैं।

कर्मकाण्डों में श्राद्ध का स्थान पाँचवा है। मानव जीवन में श्राद्ध की भी आवश्यकता होती है। मनुष्य के जीवन के लिए सामूहिक श्राद्ध कर्म माना जाता है। हिन्दु मान्यताओं के अनुसार श्राद्ध कर्म एक आवश्यक प्रक्रिया है जिसका सम्बन्ध पितरों के प्रति अगाध सम्मान एवं उनके मरणोपरांत भी उनकी आत्मा की शान्ति के लिए अपने द्वारा किए जाने वाले कर्मों का निर्वहन है।

संदर्भ

1. अनीता कुमारी – संस्कृत विभाग, महात्मा गाँधी स्नातकोत्तर, महाविद्यालय फिरोजावाद।
2. शतपथ – 3/9/3/23
3. शतपथ – 1/7/1/9, 14
4. मैत्रायणी सहिंता – 1/10/10, 14 गी. – 3/13, कौ. 5/1, गौ.उ. – 1/19.
5. तै.सं. – 6/34/71, श. 1/7/3/1, ऐ. – 1/19
6. मै.सं. – 1/10/11, तै. – 1/6/8, का.सं. – 36/11
7. य.वै. – 1/1, मै.सं. – 1/1/1/1, 4/1, श. – 1/7/1/5, तै. – 3/2/1/4
8. गीता – 3/10
9. श. – 1/7/4/4, 4/3/4/3, 11/6/3/9, ऐ. – 2/17, 4/26, कौ. 10/1/13, तै. – 3/3/7/3
10. वा0 धर्म सूत्र 7.1–2
11. ऋग्वेद 2.12.4
12. ऋग्वेद 10.90.12
13. पञ्चैव महायज्ञाः तान्ये महासत्राण श.ब्रा. 11.5.6.। इति शतपथ।
14. "सूत्राणमिनि – शतपथब्राह्मणस्य काच्चन प्रतिरूपतामनुभवन्ति" इयं हि शतपथी पंक्ति .....। स्वाध्ययोवै ब्रह्मयज्ञः इति।
15. आपस्तम्बगृहसूत्रस्थानाकुलग्रात्पर्थदर्शन – सहितस्य चौखम्बामुद्राणालयमुद्रितस्य पुस्तकस्य 104 पृष्ठे द्रष्टव्यम्।
16. मनु0 स्मृ0 – 26, गौतम धर्मसूत्र – 1.1.2.1
17. आपस्तम धर्मसूत्र – 1.12.10
18. वा0 धर्मसूत्र 7.1–2
19.